ओ३म्

**‘मर्यादा पुरूषोत्तम एवं योगेश्वर दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द को 13, 15 और 17 वर्ष की आयु में घटी शिवरात्रि व्रत, बहिन की मृत्यु और उसके बाद चाचा की मृत्यु से वैराग्य उत्पन्न हुआ था। 22 वर्ष की अवस्था तक वह गुजरात प्राप्त के मोरवी नगर के टंकारा नामक ग्राम में स्थित घर पर रहे और मृत्यु पर विजय पाने की ओषधि खोजते रहे। जब परिवार ने उनकी भावना को जाना तो विवाह करने के लिए उन्हें विवश किया। विवाह की सभी तैयारियां पूर्ण हो गई और इसकी तिथि निकट आ गई। जब कोई और विकल्प नहीं बचा तो आपने गृह त्याग कर दिया और सत्य ज्ञान की खोज में घर से निकल पड़े। आपने देश भर का भ्रमण कर सच्चे ज्ञानी विद्वानों और योगियों की खोज कर उनकी संगति की और संस्कृत व शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ योग का भी क्रियात्मक सफल अभ्यास किया। योग की जो भी सिद्धियां व उपलब्धियां हो सकती थी, उन्हें प्राप्त कर लेने के बाद भी उनका आत्मा सन्तुष्ट न हुआ। अब उन्हें एक ऐसे गुरू की तलाश थी जो उनकी सभी शंकायें और भ्रमों को दूर कर सके। मनुष्य की जो सत्य इच्छा होती है और उसके लिए वह उपयुक्त पुरूषार्थ करता है तो उसकी वह इच्छा अवश्य पूरी होती है और ईश्वर भी उसमें सहायक होते हैं। ऐसा ही स्वामी दयानन्द के जीवन में भी हुआ और उन्हें प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरू स्वामी विरजानन्द सरस्वती का पता मिला जो मथुरा में संस्कृत के आर्ष व्याकरण एवं वैदिक आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कराते थे। सन् 1860 में आप उनके शरणागत हुए और अप्रैल 1863 तक उनसे अध्ययन व ज्ञान की प्राप्ति की। अध्ययन पूरा कर गुरू दक्षिणा में स्वामीजी ने अपने गुरू को उनकी प्रिय लौंगे प्रस्तुत की। गुरूजी ने भेंट सहर्ष स्वीकार की और दयानन्द जी को कहा कि वेद और वैदिक धर्म, संस्कृति व परम्परायें अवनति की ओर हैं और विगत 4-5 हजार वर्षों में देश व दुनियां में मनुष्यों द्वारा स्थापित कल्पित, अज्ञानयुक्त, अन्धविश्वास से पूर्ण मान्यतायें व परम्परायें प्रचलित हो गईं हैं। हे दयानन्द ! तुम असत्य का खण्डन तथा सत्य का मण्डन कर सत्य पर आधारित ईश्वर व ऋषियों की धर्म-संस्कृति व परम्पराओं का प्रचार व उनकी स्थापना करो। स्वामी दयानन्द ने अपने गुरू की आज्ञा को सिर झुकाकर स्वीकार किया और कहा कि गुरूजी ! आप देखेंगे कि यह आपका अंकिचन शिष्य व सेवक आपसे किये गये अपने इस वचन को प्राणपण से पूरा करने में लगा हुआ है। ऐसा ही हम अप्रैल, 1863 से अक्तूबर, 1883 के मध्य उनके जीवन में घटित घटनाओं में देखते हैं।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 इस घटना के बाद स्वामी दयानन्द ने देश भर का भ्रमण किया। वेदों पर उन्होंने अपना ध्यान केन्द्रित किया। उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास किये। उन्होंने इंग्लैण्ड में प्रथम बार प्रो. फ्रेडरिक मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित चारों वेद मंगाये। उन्होंने चारों वेदों का गहन अध्ययन किया और पाया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं जो सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा की आत्माओं में सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी ईश्वर द्वारा प्रकट, प्रेरित, प्रविष्ट व स्थापित किये गये थे। उन्होंने यह भी पाया कि वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत में भारी अन्तर है। लौकिक संस्कृत के शब्द रूढ़ हैं जबकि वेदों के सभी शब्द नित्य होने के कारण घातुज या यौगिक हैं। उन्होंने यह भी जाना कि वेदों के शब्दों के रूढ़ अर्थों के कारण अर्थ का अनर्थ हुआ है। उन्होंने पाणिनी की अष्टाध्यायी, काशिका, पंतंजलि के महाभाष्य, महर्षि यास्क के निघण्टु और निरूक्त आदि ग्रन्थों की सहायता से वेदों के पारमार्थिक एवं व्यवहारिक अर्थ कर एक अपूर्व महाक्रान्ति को जन्म दिया और अपने पूर्ववर्ती पौर्वीय व पाश्चात्य वैदिक विद्वानों के वेदार्थों की निरर्थकता व अप्रमाणिकता का अनावरण कर सत्य का प्रकाश किया। महर्षि दयानन्द ने अपनी वेद विषयक मान्यताओं और सिद्धान्तों, जो कि शत प्रतिशत सत्य अर्थों पर आधारित हैं, का प्रकाश किया और इसके लिए उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, गोकरूणानिधि, संस्कृत वाक्य प्रबोध, व्यवहारभानु आदि अनेकानेक ग्रन्थों का सृजन किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती का यह कार्य मर्यादा पालन के साथ-साथ मर्यादाओं की स्थापनाओं का कार्य होने से इतिहास में अपूर्व है जिस कारण वह मर्यादाओं के संस्थापक होने से मर्यादा पुरूषोत्तम विशेषण के पूरी तरह अधिकारी है। इतना ही नहीं, उन्होंने वैदिक मर्यादा की स्थापना के लिए वेदों के संस्कृत व हिन्दी में भाष्य का कार्य भी आरम्भ किया। सृष्टि के आरम्भ से उनके समय तक उपलब्ध वेदों के भाष्यों में आर्ष सिद्धान्तों, मान्यताओं व परम्पराओं से पूरी तरह से समृद्ध कोई वेद भाष्य संस्कृत वा अन्य किसी भाषा में उपलब्ध नहीं था। मात्र निरूक्त ग्रन्थ ऐसा था जिसमें वेदों के आर्ष भाष्य का उल्लेख व दिग्दर्शन था। महर्षि दयानन्द ने उसका पूर्ण उपयोग करते हुए एक अपूर्व कार्य किया जो उन्हें न केवल ईश्वर की दृष्टि में अपितु निष्पक्ष संसार के ज्ञानियों में सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करता है।

 वेदों का प्रचार प्रसार ही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य सिद्ध होता है। धन कमाना व सुख भोगना गौण उद्देश्य हैं परन्तु मुख्य उद्देश्य वेदों का अध्ययन व अध्यापन, प्रचार व प्रसार, उपदेश व शास्त्रार्थ, सत्य का मण्डन व असत्य का खण्डन, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, अवतारवाद, ऊंच-नीच की भावनाओं से मुक्त होकर सबको समान मानना व दलित व पिछड़ों को ज्ञानार्जन व धनोपार्जन में समान अधिकार दिलाना, अछूतोद्धार व दलितोद्धार आदि कार्य भी मनुष्य जीवन के कर्तव्य हैं, यह ज्ञान महर्षि दयानन्द के जीवन व कार्यों को देख कर होता है। आज देश व समाज में वेदों का यथोचित महत्व नहीं रहा जिस कारण समाज में अराजकता, असमानता, विषमता, अज्ञानता, अन्धविश्वास, परोपकार व सेवा भावना की अत्यन्त कमी, दुखियों, रोगियों व निर्धनों, भूखों, बेरोजगारों के प्रति मानवीय संवेदनाओं व सहानुभूति में कमी, देश भक्ति की कमी या ह्रास आदि अवगुण दिखाई देते हैं जिसका कारण वेदों का अप्रचलन, अप्रचार व अवैदिक विचारों का प्रचलन, प्रचार व प्रभाव है। यह बात समझ में नहीं आती कि जब वेद सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए, वेदों से पूर्व संसार में कोई ग्रन्थ रचा नहीं गया और न प्राप्त होता है, वेदों की भाषा व उसके विचारों व ज्ञान का अथाह समुद्र जो मानव जाति के लिए कल्याणकारी है, फिर भी उसे भारत व संसार के लोग स्वीकार क्यों नहीं करते? हम संसार के सभी मतावलम्बियों से यह अवश्य पूछना चाहेंगे कि आप वेदों से दूरी क्यों बनाये हुए हैं? क्या वेद कोई हिंसक प्राणी है जो आपको हानि पहुंचायेगा, यदि नहीं फिर आपको किस बात का डर है? यदि है तो वह निःसंकोच भाव से क्यों नहीं बताते? महर्षि दयानन्द का मानना था जिसे हम उचित समझते हैं कि यदि सारे संसार के लोग वेदों का अध्ययन करें, समीक्षात्मक रूप से गुण-दोषों पर विचार करें और गुणों को स्वीकार कर लें तो सारे संसार में शान्ति स्थापित हो सकती है। अशान्ति व विरोध का कारण ही विचारों व विचारधाराओं की भिन्नता है, कुछ स्वार्थ व अज्ञानता है तथा कुछ व अधिक विषयलोलुपता एवं असीमित सुखभोग की अभिलाषा व आदत है। महर्षि दयानन्द यहां एक आदर्श मानव के रूप में उपस्थित हैं और वह हमें इतिहास में सभी बड़े से बड़े महापुरूषों से भी बड़े दृष्टिगोचर होते हैं। अतः यदि उन्हें मर्यादा पुरूषोत्तम कहा जाये तो यह अत्युक्ति नहीं अपितु अल्पयुक्ति है। उन्होंने स्वयं तो सभी मानवीय मर्यादाओं का पालन किया ही, साथ हि सभी मनुष्यों को मर्यादा में रहने वा मर्यादाओं का पालन करने के लिए प्रेरित किया और उससे होने वाले **“धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष”** के लाभों से भी परिचित कराया।

 आईये, अब स्वामी दयानन्द जी के योगेश्वर होने के स्वरूप पर विचार करते हैं। हम जानते है कि संसार में एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सृष्टिकर्ता ईश्वर है और वही योगेश्वर भी है। उसके बाद हमारे उन योगियों का स्थान आता है जिन्होंने कठिन योग साधनायें कीं और ईश्वर का साक्षात्कार किया। यह लोग सच्चे योगी कहला सकते हैं। अब विद्या को प्राप्त करने के बाद विद्या का दान करने का समय आता है। यदि कोई सिद्ध योगी योग विद्या का दान नहीं करता व अपने तक सीमित रहता है तो वह स्वार्थी योगी ही कहला सकता है। महर्षि दयानन्द ने देश भर में घूम-घूम कर योगियों की संगति की, योग सीखा और उसमें वह सफल रहे। इतने पर ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। इसके बाद भी उन्होंने विद्या के ऐसे गुरू की खोज की जो उनकी सभी शंकायें व भ्रान्तियां दूर कर दें। इस कार्य में भी वह सफल हुए और उन्हें विद्या के योग्यतम् गुरू प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती प्राप्त हुए। उनसे उन्हें पूर्ण विद्या का दान प्राप्त हुआ और वह पूर्ण विद्या और योग की सिद्धि से महर्षि के उच्च व गौरवपूर्ण आसन पर विराजमान होकर **“न भूतो न भविष्यति”** संज्ञा के संवाहक हुए। स्वामी श्रद्धानन्द ने उन्हें बरेली में प्रातः वायु सेवन के समय समाधि लगाये देखा था। महर्षि जहां-जहां जाते व रहते थे, उनके साथ के सेवक व भृत्य रात्रि में उन्हें योग समाधि में स्थित देखते थे। उनके जीवन में ऐसे उदाहरण भी है कि वेदों के मन्त्रों का अर्थ लिखाते समय उन्हें जब कहीं कोई शंका होती थी तो वह एक कमरे में जाते थे, समाधि लगाते थे, ईश्वर से अर्थ पूछते थे और बाहर आकर वेदभाष्य के लेखकों को अर्थ लिखा देते थे। जीवन में वह कभी डरे नहीं, यह आत्मिक बल उन्हें ईश्वर के साक्षात्कार से ही प्राप्त हुआ एक गुण था। अंग्रेजों का राज्य था, सन् 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम हो चुका था, उस समय वह 32 वर्ष के युवा संन्यासी थे। उन्होंने उस संग्राम में गुप्त कार्य किये जिसका विवरण उन्होंने कभी प्रकट नहीं किया न उनके जीवन के अनुसंधानकर्ता व अध्येता पूर्णतः जान पाये। इसके केवल संकेत ही उनके ग्रन्थों में वर्णित कुछ घटनाओं में मिलते हैं। इस आजादी के आन्दोलन के विफल होने पर उन्होंने पूर्ण विद्या प्राप्त कर पुनः सक्रिय होने की योजना को कार्यरूप दिया और अन्ततः वेद प्रचार के नाम से देश में जागृति उत्पन्न की। अन्तोगत्वा 15 अगस्त, 1947 को देश अंग्रेजों की दासता से स्वतन्त्र हुआ। उनके योगदान का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि स्वराज्य को सुराज्य से श्रेष्ठ बताने वाले प्रथम पुरूष स्वामी दयानन्द थे और उनके आर्य समाजी विचारधारा के अनुयायियों की संख्या आजादी के आन्दोलन में सर्वाधिक थी। लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, महादेव रानाडे, क्रान्ति के पुरोधा श्यामजी कृष्ण वर्मा, पं. राम प्रसाद बिस्मिल, शहीद सुखदेव आदि सभी उनके अनुयायी व अनुयायी परिवारों के व्यक्ति थे। महर्षि दयानन्द को इस बात का भी श्रेय है कि उन्होंने योग को गृहत्यागी संन्यासी व वैरागियों तक सीमित न रखकर उसे प्रत्येक आर्य समाज के अनुयायी के लिए अनिवार्य किया। आर्य समाज के अनुयायी जो **“ईश्वर का ध्यान व सन्ध्या”** करते हैं वह अपने आप में पूर्ण योग है जिसमें योग के आठ अंगों का समन्वय है। स्वयं सिद्ध योगी होने और योग को घर-घर में पहुंचाने के कारण स्वामी दयानन्द **“योगेश्वर”** के गरिमा और महिमाशाली विशेषण से अलंकृत किये जाने के भी पूर्ण अधिकारी है।

 महर्षि दयानन्द के वास्तविक स्वरूप को जानने व मानने का कार्य इस देश के लोगों ने अपने पूर्वाग्रहों, अज्ञानता व किन्हीं स्वार्थों आदि के कारण नहीं किया। इससे देश वासियों व विश्व की ही हानि हुई है। उन्होंने वेदों के ईश्वर प्रदत्त ज्ञान को सारी दुनियां से बांटने का महा अभियान चलाया लेकिन संकीर्ण विचारों के लोगों ने उनके स्वप्न को पूरा नहीं होने दिया। आज आधुनिक समय में भी हम प्रायः रूढि़वादी बने हुए हैं। आत्म चिन्तन व आत्म मंथन किये बिना किसी धार्मिक व सामाजिक विचारधारा पर विश्वास करना रूढि़वादिता है जो देश, समाज व विश्व के लिए हितकर नहीं है। हम अनुभव करते हैं कि शिक्षा में मजहबी शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा कर वैज्ञानिक प्रमाणों के साथ तर्क, युक्ति, सृष्टिक्रम के अनुकूल ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के स्वरूप का अध्ययन सभी देशवासियों को अनिवार्यतः कराया जाना चाहिये। मनुष्य ईश्वर को कैसे प्राप्त कर सकता है, उसे प्राप्त करने की योग की विधि पर भी पर्याप्त अनुसंधान होकर प्रचार होना चाहिये जिससे हमारा मानव जीवन व्यर्थ सिद्ध न होकर सार्थक सिद्ध हो। लेख के समापन पर हम मर्यादा पुरूषोत्तम और योगश्वर दयानन्द को कोटिशः नमन करते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**